पुनरीक्षण सिविल

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति आर एस नरूला के समक्ष

नंद राम,—वादी-याचिकाकर्ता।

बनाम

करनैल सिंह और अन्य,-प्रतिवादी।

1976 का नागरिक संशोधन संख्या 1278

11 मार्च 1977

सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का अधिनियम 5) - आदेश 6 नियम 17, आदेश 7 नियम 1 (डी) और आदेश 32 नियम 3 - नाबालिगों के खिलाफ मुकदमा - अल्पसंख्यक के तथ्य का वादी में खुलासा नहीं किया गया - संशोधन के लिए सीमा की समाप्ति के बाद आवेदन ऐसे तथ्य का खुलासा करें और अभिभावक की नियुक्ति के लिए-क्या उसे अनुमति दी जा सकती है।

अभिनिर्धारित किया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 1 (डी) की आवश्यकता के अनुपालन के लिए संशोधन के लिए एक आवेदन इतनी औपचारिक प्रकृति का है कि किसी भी अदालत को इसे सामान्य रूप से अस्वीकार नहीं करना चाहिए यदि इसे बनाने के लिए प्रार्थना शीघ्र ही की गई हो। मुकदमे की स्थिति अभिभावक की नियुक्ति के लिए एक आवेदन मुकदमा दायर करने की समय सीमा समाप्त होने के बाद किया जा सकता है, संहिता के आदेश 32 नियम 3 के तहत एक आवेदन को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि मुकदमा, यदि तारीख पर दायर किया गया है आवेदन दाखिल करने में समय की बाधा होती। (पैरा 3)

श्री वीपी चौधरी, उप न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, नरवाना की अदालत के 7 अगस्त, 1976 के आदेश के पुनरीक्षण के लिए धारा 115 सीपीसी के तहत याचिका, वादी के दोनों आवेदनों को खारिज कर दिया गया और आदेश दिया गया कि मामला 12 अगस्त, 1976 तारीख को आगे की कार्यवाही के लिए आएगा।

याचिकाकर्ता के वकील एमएस जैन।

प्रतिवादियों की ओर से जीसी मितल, अधिवक्ता और अरुण जैन, अधिवक्ता,

निर्णय

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति आर एस नरूला, (मौखिक)—

(1) 3 मार्च 1975 को, वादी याचिकाकर्ता ने 7 मार्च 1974 को प्रभावित बिक्री को तीन विक्रेताओं के पक्ष में प्री-एम्प्ट करने के लिए मुकदमा दायर किया, जिनमें से सभी नाबालिग थे। उनके अल्पसंख्यक होने के बारे में न जानते हुए वादी ने वादपत्र में उनका इस प्रकार वर्णन नहीं किया। जब प्रतिशोधी उत्तरदाताओं को समन जारी किए गए तो यह बताया गया कि वे नाबालिग थे। इसके बाद वादी ने 5 अप्रैल, 1976 को वाद में संशोधन करने की अनुमति के लिए एक आवेदन किया। जो संशोधन मांगा गया वह था -

(1) प्रतिशोधी प्रतिवादियों के नाम के बाद 'नाबालिग' शब्द जोड़ना और उसके बाद "बा-सरपरस्ती दांडी राम पिता खुद उनके पिता दांडी राम की संरक्षकता में" शब्द जोड़ना, और

(2) मौजूदा पैराग्राफ 5 के बाद वादपत्र में पैराग्राफ 5 (ए) जोड़ना, जिसमें यह कहा जाना था कि तीन प्रतिवादी-प्रतिवादी नाबालिग हैं और वे अपने पिता दांडी राम के साथ रहते हैं, जिनका हित उनके प्रतिकूल नहीं है। नाबालिग और दंडी राम उनके अभिभावक के रूप में नियुक्त होने के हकदार हैं।

वादी ने दंडी राम को नाबालिग प्रतिवादियों के संरक्षक के रूप में नियुक्त करने के लिए संहिता के आदेश 32 नियम 3 के तहत एक अलग आवेदन भी दायर किया। प्रतिवादियों की ओर से दोनों आवेदनों का इस आधार पर विरोध किया गया कि प्री-एम्प्शन के अधिकार के प्रयोग में मुकदमा दायर करने की सीमा 7 मार्च, 1975 को समाप्त हो गई थी, और चूँकि दोनों आवेदन अप्रैल, 1976 में किए गए थे। , इनकी अनुमति नहीं दी जा सकती। श्री वीपी चौधरी, उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नरवाना ने अपने आदेश, दिनांक 7 अगस्त, 1976 द्वारा दोनों आवेदनों को एक ही आधार पर खारिज कर दिया है। उस आदेश से संतुष्ट नहीं होने पर वादी उसके पुनरीक्षण के लिए इस न्यायालय में आया है।

(3) वादी-याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री एमएस जैन ने प्रस्तुत किया है कि प्रश्न के समक्ष ट्रायल कोर्ट का संपूर्ण दृष्टिकोण कानून के विपरीत था, यहां तक कि प्रतिवादियों के अल्पसंख्यक होने का खुलासा न करना। वादपत्र मुकदमे के लिए घातक नहीं है और नाबालिग प्रतिवादी के अभिभावक की नियुक्ति के लिए आवेदन मुकदमा दायर करने की समय सीमा समाप्त होने के बाद किया जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि शिकायत में विक्रेताओं के नाम और विवरण सही ढंग से दिए गए हैं। वादपत्र में जो गायब है वह केवल संहिता के आदेश 7 नियम 1(डी) की आवश्यकता है जिसमें कहा गया है कि मुकदमे के वादपत्र में निम्नलिखित विवरण शामिल होंगे: -

(डी) जहां वादी या प्रतिवादी नाबालिग या विकृत दिमाग का व्यक्ति है, उस आशय का एक बयान;

आदेश 32, संहिता के नियम 3 में यह आवश्यक है कि जहां किसी मुकदमे में प्रतिवादी नाबालिग है, अदालत उसके नाबालिग होने के तथ्य से संतुष्ट होने पर, ऐसे नाबालिग के मुकदमे के लिए संरक्षक के रूप में एक

उचित व्यक्ति को नियुक्त करेगी। श्री जैन का तर्क यह है कि किसी मुकदमे के प्रयोजनों के लिए किसी नाबालिग के अभिभावक की नियुक्ति मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किसी भी समय की जा सकती है और मुकदमा दायर करने के लिए सीमा की अवधि समाप्त होने से पहले इसकी आवश्यकता नहीं है।वकील ने इस संबंध में अब्दुल अजीज एसके में न्यायमूर्ति विवियन बोस के फैसले पर भरोसा किया है। इमाम, मुसलमान और अन्य बनाम एसके। अमीर एस.के. बुरहम मुसलमान और अन्य, (एआईआर 1941 नागपुर 130), जहां यह माना गया है कि लिमिटेशन एक्ट के प्रयोजन के लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रतिवादी बालिग है या नाबालिग, जब तक मुकदमा सही व्यक्ति के खिलाफ लाया जाता है। विद्वान न्यायाधीश ने माना कि एक नाबालिग के खिलाफ मुकदमा, जहां तक परिसीमन अधिनियम का संबंध है, उचित व्यक्ति के खिलाफ है, चाहे उसे बालिग या नाबालिग के रूप में वर्णित किया गया हो और इसलिए, यदि समय सीमा समाप्त नहीं हुई है तो यह समय के भीतर है। जिस पर वाद पत्र प्रस्तुत करने से वाद संस्थित होता है। यह माना गया कि संरक्षकता का प्रश्न एक अलग मामला है और मुकदमे की स्थापना से संबंधित नहीं है, बल्कि वादी के उस व्यक्ति के खिलाफ इसे जारी रखने के अधिकार से संबंधित है, जो वास्तव में नाबालिग है। आगे कहा गया कि जब तक कोई अभिभावक नियुक्त नहीं किया जाता तब तक कोई मुकदमा अमान्य नहीं होता और यह कहना सही नहीं है कि जब तक नाबालिग प्रतिवादी का अभिभावक नियुक्त नहीं किया जाता तब तक कोई भी मुकदमा संस्थित नहीं माना जा सकता। फिर हर लाई सिंह और अन्य बनाम रुद्र सिंह और अन्य, (एआईआर 1927 इलाहाबाद 787) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय (लिंडसे और सुलेमान, न्यायमूर्ति) की डिवीजन बेंच के फैसले का संदर्भ दिया गया है। विद्वान न्यायाधीशों ने माना कि जहां प्री-एम्प्शन मुकदमे में एक नाबालिग प्रतिवादी के लिए एक अभिभावक को मुकदमा दायर करने के लिए सीमा की अवधि की समाप्ति के बाद नियुक्त किया जाता है, परिसीमन की दलील पर दोष मुकदमे के लिए घातक नहीं है। अगला मामला जिस पर श्री जैन ने भरोसा किया है, वह वली मोहम्मद खान बनाम इशाक अली खान और अन्य (एआईआर 1931 इलाहाबाद 507, सुलेमान, एसीजे, जिन्होंने अंतिम राय दी थी) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों की एक विशेष पीठ का फैसला है। मामले में शामिल कानून के सवाल पर, यह माना गया कि जहां एक वादी के नाम पर उसकी मां द्वारा अभिभावक और अगले दोस्त के रूप में कार्य करते हुए और उसे नाबालिग बताते हुए एक मुकदमा दायर किया गया है, जबकि वास्तव में मुकदमा उसके द्वारा अधिकृत किया गया है और उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से मुकदमा चलाया गया है, मुकदमे को तकनीकी आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि मूल रूप से दायर वाद में उसे अपनी मां की संरक्षकता के तहत नाबालिग बताया गया है। इस प्रकार के दोष का वर्णन विशेष द्वारा किया गया की बेंच इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने वाद के स्वरूप में दोष के रूप में देखा, न कि उसके सार में और यदि यह वास्तविक गलती के कारण है तो इसे ठीक किया जा सकता है। 'इलाहाबाद उच्च न्यायालय की विशेष पीठ के फैसले के बाद, इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश (पत्तर, न्यायमूर्ति.) ने भी रामअवतार बनाम बलबीर और अन्य, (1975 पीएलआर 665) में माना है कि जब कोई मुकदमा दायर किया गया है एक वादी का नाम, एक अन्य व्यक्ति द्वारा उसके अगले दोस्त के रूप में कार्य करते हुए, एक वास्तविक गलती के माध्यम से उसे नाबालिग के रूप में वर्णित करना, जबकि तथ्य यह है कि मुकदमा शुरू होने के समय वह बालिग था, तो मुकदमे को खारिज नहीं किया जा सकता है। तकनीकी दलील यह है कि मुकदमा शुरू होने की तिथि पर वादी नाबालिग नहीं था। यह माना गया कि ऐसी परिस्थितियों में वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए। वकील का कहना है कि किसी भी मुकदमे को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि आदेश 7, नियम 1 (डी) की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया है और वादपत्र में यह दिखाने का उद्देश्य कि एक विशेष पक्ष नाबालिग है, केवल तथ्य सामने लाना

है। पक्ष के अल्पमत की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करें ताकि न्यायालय इस तथ्य को सभी उचित चरणों में ध्यान में रख सके, उदाहरण के लिए, यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि पक्ष का प्रतिनिधित्व एक अभिभावक द्वारा किया जाता है जिसके हित प्रतिकूल नहीं हैं नाबालिग के मामले या यदि और जब समझौते की पेशकश की जाती है, तो यह सुनिश्चित करने के लिए मामला दायर किया जाएगा कि समझौते की शर्तें नाबालिग और ऐसे अन्य मामलों के हित में हैं। उन्होंने एके गुप्ता एंड सन लिमिटेड बनाम दामोदर वैली कॉरपोरेशन, (एआईआर 1967 एससी 96), और जय जय राम मनोहर लाल बनाम नेशनल बिल्डिंग मटेरियल सप्लाई, गुड़गांव, (ए.आईआर 1969 एससी 1267) में सुप्रीम कोर्ट के उनके आधिपत्य के फैसलों का उल्लेख किया है। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कि केवल यह तथ्य कि जिस तारीख को संशोधन के लिए आवेदन किया गया है या संशोधन की अनुमति दी गई है, उस तारीख पर समय की पाबंदी होगी, यह अपने आप में संशोधन के लिए आवेदन को खारिज करने का निर्णायक आधार नहीं है। वादी. श्री जैन के अनुसार, ऐसे मामलों में लागू होने वाले परीक्षणों में से एक यह है कि क्या मुकदमा केवल इसलिए खारिज किया जा सकता है क्योंकि प्रतिवादियों को इस तथ्य के बावजूद नाबालिग नहीं बताया गया था कि नाबालिग होने का पता चलने पर अदालत इस स्थिति में थी उनके संरक्षक विज्ञापन वस्तु को नियुक्त करें।

(3) इन प्रस्तुतियों के उत्तर में प्रतिवादी-प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री गोकल चंद ने सबसे पहले इस आशय की प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि पुनरीक्षण के तहत आदेश वादी-याचिकाकर्ता के दो अलग-अलग आवेदनों पर पारित किया गया था। वादपत्र में संशोधन के लिए और दूसरा अभिभावक की नियुक्ति के लिए विज्ञापन-और यह कि दो आवेदनों पर पारित आदेश के पुनरीक्षण के लिए एक याचिका सक्षम नहीं है। उनका कहना है कि चूंकि संहिता की धारा 115 के तहत याचिका दायर करने के लिए सीमा निर्धारित है, इसलिए याचिकाकर्ता को उस आदेश का चयन करने का विकल्प दिया जाना चाहिए जिसके खिलाफ वह याचिका को बनाए रखना चाहता है और ट्रायल कोर्ट के अन्य आदेश को बरकरार रखा जाना चाहिए। मैं एक से अधिक कारणों से इस तर्क से सहमत नहीं हो पा रहा हूँ। भले ही याचिका को किसी एक आदेश के खिलाफ याचिका के रूप में माना जाए, यह इस न्यायालय की क्षमता के भीतर है कि वह दूसरे आदेश को रद्द कर दे, यदि ऐसा लगता है कि दूसरा आदेश या तो क्षेत्राधिकार से अधिक या उसके बिना या भौतिक अनियमितता या अवैधता के साथ पारित किया गया है। ट्रायल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में. इसके अलावा, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संशोधन के लिए आवेदन वास्तव में कोई गंभीर मामला नहीं है। पैराग्राफ 5ए, जिसे वादपत्र में जोड़ने की मांग की गई थी, बिल्कुल आवश्यक नहीं था। आदेश 7 नियम 1(डी) की आवश्यकता का अनुपालन करना और नाबालिग प्रतिवादियों के विवरण में "नाबालिग" शब्द जोड़ना आवश्यक था। उस प्रकार का संशोधन इतनी औपचारिक प्रकृति का है कि यदि मुकदमे के प्रारंभिक चरण में इसे बनाने के लिए प्रार्थना की गई है तो अदालत को आम तौर पर इसे अस्वीकार कर देना चाहिए। अब्दुल अजीज एसके में विवियन बोस, जे. के स्पष्ट निर्णय को देखते हुए। इमाम मुसलमान के मामले (सुप्रा) में, यह पेटेंट है कि मुकदमा दायर करने की सीमा की अवधि समाप्त होने के बाद अभिभावक की नियुक्ति के लिए आवेदन किया जा सकता है। मैं उस दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हूं। इसलिए, आदेश 32 नियम 3 के तहत आवेदन को केवल इसलिए खारिज करने का कोई सवाल नहीं था क्योंकि यदि आवेदन दाखिल करने की तारीख पर मुकदमा दायर किया जाता, तो समय से बाधित होता। ट्रायल कोर्ट ने भीम सैन और अन्य बनाम हरीश चंदर (1971 पीएलजे 2511), और सूरज भान और अन्य बनाम बलवान सिंह (1971 पीएलजे 918) के फैसले पर भरोसा किया। उन मामलों को तथ्यों के

आधार पर अलग किया जा सकता है। अन्यथा भी, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्धारित कानून ऊपर उल्लिखित अधिकारियों की प्रवृत्ति के साथ पूरी तरह से सुसंगत नहीं है।

(4) उपरोक्त कारणों से, मैं इस याचिका को स्वीकार करता हूं, 7 अगस्त 1976 के ट्रायल कोर्ट के आदेशों को रद्द करता हूं, और वादी-याचिकाकर्ता के दोनों आवेदनों को स्वीकार करता हूं और उसे संशोधन करने की अनुमति देता हूं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा मेंअनुवादि त निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्या न्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

आकाश जिंदल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

गुरूग्राम, हरियाणा